आश्रय की तलाश में

मीडिया के लोगों के लिए एक संगोष्ठी का आयोजन किया जाना था। आयोजक मित्र दिल्ली-मुम्बई के कुछ बड़े पत्रकारों से बात कर रहे थे। आयोजक का मत था कि मीडिया को समाज सरोकारी बनाने की बहुत जरूरत है और इसलिए बड़े लोग बात करें और रास्ता बतायें। पर जिसे देखो वही-समय नहीं है-का जबाब दे रहा था। टीवी वाले कहते थे- यहीं दिल्ली में होता तो एक-आध घंटा निकाला जा सकता है पर बाहर जाना तो संभव है नहीं। दो दिन तो छोड़ो एक दिन भी नहीं। टी.आर.पी. का दबाव ही ऐसा है जो चैन से खाना भी नहीं खाने देता। प्रिंट में ऐसा दबाव तो नहीं है, पर वह बेदबाव भी नहीं है। एक-आध दिन निकल सकता है पर ट्रेन की यात्रा से नहीं। हवाई यात्रा से जिससे अधिकतम बारह घंटों में वापिसी हो जाये। फिर विषय को लेकर भी अलग-अलग रूख थे। जो परिचित होते थे, वे सलाह देते थे, नये लोगों को ले जायें। वे कुछ फ्री होते हैं।

जिन लोगों से बात की जा रही थी, वे सचमुच ही अनुभवी लोग थे। उन्होंने प्रिंट तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में लम्बा वक्त गुजारा है। उन्होंने मीडिया तथा मीडिया में काम करने वाले लोगों के अच्छे दिन आते हुए देखे थे। वे उन दिनों के या तो गवाह थे या उन्होंने सुना हुआ था जब न तो पत्रकारों को कोई विवाह के योग्य मानता था और न अपने बेटे या बेटी को पत्रकारिता में भेजना चाहता था।

उन्होंने अच्छे दिनों के बाद ही तो यह बदलाव देखा है, जब मीडिया की ओर लोग इन दोनों मामलों में नरम रूख रखने लगे हैं। दस-पंद्रह साल मीडिया में गुजारने के बाद अब यदि किसी के पास चार पहिये वाला वाहन नहीं है तो उसके पत्रकार होने पर लोग संदेह करने लगते हैं। मकान, वाहन आदि अब सामान्य सी बातें हैं। हां, यह बात जरूर है कि मीडिया अब भी कुछ अन्य क्षेत्रों की तुलना में कमजोर माना जाता है।

मीडिया के यह जो अनुभवी लोग हैं, उनसे आप मीडिया के बारे में बात करें तो वे यह आपसे कह सकते हैं कि मीडिया अब घाटे का सौदा या व्यवसाय उस तरह से नहीं है, जैसा वह अब से तीस-चालीस साल पहले था। वे आपको मीडिया में सेवा के बजाय व्यवसाय के लिए आने की सलाह दे सकते हैं। यदि आप चाहें तो वे उन उपायों और रास्तों के बारे में भी बता देते हैं जिनसे मीडिया में व्यावसायिक सफलता सरलता से पाई जा सकती है। इन अनुभवी लोगों में वे भी मिल जायेंगे जो

समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा चैनलों के उत्थान-पतन के कारणों का विवेचन करते हुए बता सकते हैं कि किसने किस रास्ते और उपाय से व्यावसायिक सफलता पाई है।

वे इसे आंकड़ों, उदाहरणों और कथनों से प्रमाणिक बनाते हुए कहेंगे जिससे यह सब अध्ययन की तरह लगे और स्वीकार किया जाये। उनका यह कहना असत्य भी नहीं है। सन् साठ और अस्सी के बाद जो लोग मीडिया व्यवसाय में आये हैं उनके वर्ग और व्यवसाय, विवेचन के आधार पर इसे सहजता से जाना जा सकता है। हां, यह सही है कि उन्होंने अपने मुखौटे को व्यवसायी रंग के बजाय समाजी रंग में ही रचा और रखा है।

इन बातचीतों से जो तथ्य सामने आये, वे ही समझने और विचार करने के लिए हैं। कहने के लिए तो यह कहा जाता है कि विकास, मानवीय संवेदन, तथ्य, सरोकार आदि के आधार पर समाचार और विचार का चयन किया जाना चाहिये। पर यह बाह्य चेहरा है। सरकार और बाजार का विवेचन भीतर होता है। पाठक और दर्शक और वह भी क्रयशक्ति वाले, किन-किन आधारों पर जुड़ सकते हैं, यह उसी विवेचन का विस्तार होता है।

सत्ता का बला-बल और योद्धा भाव भी इसी व्यापार का अंग होता है। किन बातों से उत्तेजना, उन्माद आदि सक्रियता के भाव पैदा होते हैं, इसे विशेषता के रूप में समझा जाता है। इसी के आधार पर तस्वीरों का चयन, भाषा व्यवहार, सामग्री का चयन और उसकी प्रस्तुति तथा उसकी पुनरूक्ति इसी सबके आसपास घूमती है। तथ्य और जानकारियों का अपने दृष्टिकोण से व्याख्या करते हुए प्रस्तुत करना, उभारना या उभाड़ना, हुंकार के साथ वीरता का रूप प्रस्तुत करना इसका ही नाटकीय रूपांतरण होता है। यह तो संकेत हैं, पर अपने आसपास होने वाली घटनाओं और प्रसंगों को इन तहों के सहारे देखें तो पायेंगे, प्रस्तुत सच के पीछे का सच, जो व्यवसाय को केन्द्र में रखकर सावधानी से रचा जाता है। उन समाचार पत्र और पत्रिकाओं के व्यावसायिक विकास को देखें तो यह सब गलत नहीं लगेगा।

उन टीवी चैनलों की प्रस्तुतियों का विवेचन करके देखें तो पायेंगे समाज के विकास के ध्येय के पीछे का सच असल में है क्या? जो भी सहायता, मदद या मान्यता देने वाली इकइयां हैं, उनके आशय, शर्तें और मंतव्य क्या होते हैं, इसका विवेचन छिपे सच को सामने लाने में समर्थ है।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि बिना बहुत बड़ी पूंजी के अभाव में मीडिया के किसी भी रूप को प्रतिष्ठित करना कठिन है और बड़ी पूंजी का निवेश लाभदायी व्यावसायिक संभावना के बिना संभव नहीं है। व्यवसाय का बहुत साफ मतलब है मुनाफा जिसके अपने पैंतरे और नीति आधार हैं। मीडिया का एक अच्छा-बुरा पक्ष यह भी है कि यह सत्ता व्दंद का आधार बनता है। यह व्दंद उसके अपने विचार से होता है या इसके लिए वह किसी तरह का बंधक होता है, यह तो वही जाने पर

इससे साधारणत: मुक्ति नहीं है। इसी की संगति में अहम भाव भी होता है। विनम्र दिखाई देने पर भी उसका अपना ईगो होता तो है।इसी सबके कारण ही तो मीडिया जाने-अनजाने पूंजी, सत्ता, प्रशासन के आश्रय में होता है या उनका आश्रय चाहता है। इस आश्रय के लिए उसकी नीति और मूल्य बदल जाते हैं। इस आश्रय में रहने पर वे बदलेंगे ही। पचास वर्ष पूर्व के मीडिया का आश्रय यह नहीं था, यह तो नहीं कहा जा सकता पर यह कहा जा सकता है कि उनमें से बहुतेरे ऐसे थे जो इन आश्रयों के बजाय लोकाश्रय के साथ थे। लोकाश्रय उनका हित देखता था और लोकाश्रय ही उनको जीवन देता था। वे संकट में होते थे पर उनकी अपनी साख, सम्मान और प्रभाव-शक्ति थी जो उसका प्रभामंडल बनाती थी। यह प्रभा मंडल और उस तरह का लोकाश्रय नहीं है इस समय, यह तो बेहिचक कहा जा सकता है। उसकी जरूरत भी संभवत: नहीं समझी जा रही है पर उसे इस आश्रय के बारे में विचार करने की जितनी आवश्कता इस समय है, संभवत: इससे पूर्व नहीं थी।

****